तप : एक महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान

मुनिश्री सुमेरमलजी 'लाडनूं'

[युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी के शिष्य]

तप का महत्त्व सभी भारतीय दर्शनों में है। कृतकर्मों को तोड़ने के लिए सभी ने तप को बहुत बड़ा साधन माना है। इसलिए यहाँ ज्ञानी से भी तपस्वी को अधिक महत्त्व मिलता आया है। ज्ञान में विवाद हो सकता है, तप में नहीं। तप निर्विवाद आत्म-उज्ज्वलता का एक महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान है। जैन दर्शन में मोक्ष के चार महत्त्वपूर्ण साधनों में तप को एक साधन माना गया है। भगवान से पूछा गया—"तवे णं भंते ! जीवे किं जणयई" तप करने से जीव को क्या लाभ प्राप्त होता है ? समाधान देते हुए बताया है—"तवे णं बोदाणं जणयई।" तप से कर्म बोदे (जीर्ण) हो जाते हैं, फिर उसे तोड़ने में विशेष परिश्रम करना नहीं पड़ता। "तवसा धुणइ पुराण पावगं" तपस्या से मुनि पूर्वसंचित कर्मों को धुन डालता है, इसीलिए सुगति प्राप्त करने वालों को तप प्रधान बतलाया है। जिनका जीवन तप-प्रधान होगा उन्हें अपने आप सुगति (श्रेष्ठगति) प्राप्त हो जाती है। पापकर्म तप से खत्म हो जाते हैं और पुण्य कर्म का जब भारी संचय हो जाता है, सुगति—देवगति प्राप्त हो जाती है। पुण्य और पाप जब दोनों क्षय हो जाते हैं, तब सुगति (मोक्षगति) प्राप्त हो जाती है। पाप क्षय होने के बाद अकेले पुण्य का बन्धन दीर्घकालिक नहीं होता, उन्हें भी समाप्त होना पड़ता है।

जैन तपस्या विधि में नाना प्रकार से तप करने का उल्लेख है।

अग्लानभाव से आत्मा को तपाने की प्रक्रिया का नाम तप है। जिसमें जीवहिंसा न हो, किसी दूसरे को कष्ट न हो, उसी तप विधि को तप कहा गया है। "अनाहारस्तपः कथितम्" अनाहार को तप कहा गया है। इसमें किसी को कष्ट पहुँचने की संभावना नहीं रहती।

आहार के चार प्रकार माने गये हैं—(१) असन (२) पानी, (३) खादिम, (४) स्वादिम। सामान्यतः तप चारों प्रकार के आहार से निवृत्त होने पर ही होता है। तीर्थंकर देव जितनी तपस्या करते हैं, वह सभी चउविहार होती है। तपस्या का दूसरा प्रकार तिविहार का होता है, उसमें पानी लेकर तप किया जाता है, पानी के अतिरिक्त तीनों प्रकार के आहारों में निवृत होना होता है। वर्तमान में तिविहार तपस्या अधिक प्रचलित है।

आछ पीकर भी तप करने की परम्परा रही है। सिर्फ आछ के अतिरिक्त और कोई चीज काम में नहीं लेते। आछ, छाछ के उकालने के बाद ऊपर निकर आने वाले पानी को कहा जाता है। छाछ नीचे रह जाती है, केवल नीला-नीला पानी ऊपर आ जाता है, उसे छानकर पीने वाले की तपस्या आछ के आधार पर तपस्या कही जाती है। चार महिना, छः महिना आदि लम्बे दिनों की तपस्या आजकल आछ लेकर की जाती है। आछ लेकर वर्तमान में सर्वाधिक लम्बी तपस्या तेरापंथ धर्मसंघ में साध्वी श्री भुरांजी ने की है, उन्होंने तीन सौ छत्तीस दिनों की तपस्या की थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तपस्या के विभिन्न प्रकार

तपस्या का कालमान वैसे एक दिन से लेकर बारह महिनों तक का है। जिनकी जितनी शारीरिक क्षमता हो उतनी ही तपस्या की जा सकती है। बारह महिनों की तपस्या भगवान ऋषभ के शासन काल में थी, बीच के तीर्थंकरों के साधना काल में आठ महिनों की उत्कृष्टतम तपस्या मानी जाती थी। अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर के साधना काल में छः महिनों की उत्कृष्ट तपस्या रही। जिनकी जितनी क्षमता हो वह उतना ही तपस्या से अपने को लाभान्वित कर लेता है। जैन आगमों में इनके कुछ प्रकार बताये हैं, वे इस प्रकार हैं—

गुणरत्न संवत्सर तप : इसमें पहिले महिने में एकान्तर उपवास, दूसरे महिने में बेले-बेले, तीसरे महिने में तेले-तेले, ऐसे करते-करते सोलहवें महिने में सोलह-सोलह का तप किया जाता है। इस तप में तपस्या के चारसौ सात दिन होते हैं, तथा तिहोत्तर दिन पारणे के होते हैं, कुल चार सौ अस्सी दिनों का यह गुण-रत्न संवत्सर तप कहा जाता है।

रत्नावली तप : इसमें उपवास बेला-तेला करके फिर आठ बेले किये जाते हैं। उसके बाद उपवास से शुरू करके सोलह तक तप किया जाता है, वहाँ फिर चौंतीस बेले किये जाते हैं। बाद में सोलह पन्द्रह यों उतरते हुए उपवास तक आ जाते हैं, फिर आठ बेले किये जाते हैं, अन्त में तेला बेला और उपवास करके इसे सम्पन्न किया जाता है। इस तप में चार सौ बहोत्तर दिन लगते हैं, इनमें अठासी दिन पारणे के होते हैं, शेष तीन सौ चौरासी दिन तप के होते हैं।

पारणे की विधि भेद से इस तप की चार परिपाटी हो जाती हैं। एक विधि में पारणे में दूध, दही, घी आदि विगय का सेवन किया जा सकता है। दूसरी विधि में विगय न लेना, सिर्फ लेप लगा हुआ ले सकते हैं। तीसरी विधि में लेप भी नहीं ले सकते, छाछ, राबड़ी, बिना बगार (छोंक) की सब्जी, दाल आदि काम में ले सकते हैं। चौथी विधि में आयंबिल करना होता है। इस प्रकार पारणे के विधि भेद से इसके चार भेद हो जाते हैं।

कनकावली तप—यह तप भी रत्नावली तप जैसा ही है, इसमें सिर्फ आठ-आठ बेले और बीच में चौंतीस बेले की जगह, तेले किये जाते हैं। इस क्रम से तप करने में सतरह मास और बारह दिन लगते हैं। उनमें अठासी पारणे आते हैं और चार सौ चौबीस दिन तप के हो जाते हैं। पारणे के भेद से इस तप की भी उपर्युक्त चार परिपाटी होती हैं।

मुक्तावली तप—इसमें तपस्या करने वाला एक से सोलह तक चढ़ता है, किन्तु बीच में एक-एक उपवास करता हुआ चढ़ता है, जैसे—बेला करके पारणा किया फिर उपवास किया, फिर तेला किया, इस प्रकार हर तपस्या के बाद उपवास करके आगे का तप करता हुआ सोलह तक चढ़ता है, फिर उपवास करके उसी क्रम से पन्द्रह-चौदह करता हुआ उतरता है। इस तप में ग्यारह महिने पन्द्रह दिन लगते हैं। इनमें उनसठ दिन पारणे के और दो सौ छयासी दिन तपस्या के होते हैं। पारणे के भेद से इसकी भी चार परिपाटी होती हैं।

लघुसिंहनिष्क्रीड़ित तप—जैसे क्रीड़ारत सिंह चलता हुआ हर दो चार कदम बाद पीछे की ओर देखता है, फिर आगे चलता है, इसी क्रम से की जाने वाली तपस्या को लघुसिंहनिष्क्रीड़ित तप कहते हैं।

इस तप में उपवास करके बेला करना होता है, फिर उपवास करके तेला किया जाता है। फिर बेला करके चोला करना पड़ता है। इसी क्रम से नौ तक चढ़कर पुनः उपवास तक उतरना पड़ता है। इस तप में छः महिने सात दिन लगते हैं, इसमें तैंतीस पारणे के और एक सौ चौपन दिन तप के होते हैं। पारणे के भेद से इसकी भी चार परिपाटी होती हैं।

महासिंहनिष्क्रीड़ित तप—इसकी विधि भी लघुसिंहनिष्क्रीड़ित तप की भाँति ही है, फर्क इतना ही है, उसमें नौ तक चढ़ना पढ़ता है, और इसमें सोलह तक चढ़ा जाता है। इस तप को करने में अठारह महिने और अठारह दिन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लगते हैं, जिसमें इकसठ दिन पारणे के और चार सौ सितालवें दिन तप के होते हैं। पारणे के भेद से इसकी भी चार परिपाटी होती हैं।

आयंबिल वर्धमान तप—इसमें एक आयंबिल से क्रमशः चढ़ते-चढ़ते एक सौ आठ तक चढ़ना होता है। इसका क्रम इस प्रकार है—एक आयंबिल, फिर एक उपवास, फिर दो आयंबिल फिर एक उपवास, फिर तीन आयंबिल फिर एक उपवास इस प्रकार प्रत्येक संख्या की समाप्ति पर एक उपवास करके अगली संख्या के आयंबिल प्रारम्भ कर दिए जाते हैं। आयंबिल में भी सिर्फ एक धान की बनी वस्तु और पानी के अतिरिक्त कुछ नहीं लिया जा सकता, नमक भी नहीं होना चाहिए।

इसी प्रकार लघुसर्वतोभद्र, महासर्वतोभद्र, भद्रोत्तर प्रतिमा का वर्णन भी अंतकृत दशांगसूत्र में मिलता है। इसके अतिरिक्त भिक्षु की बारह प्रतिमाओं को भी तपप्रधान माना गया है। धूप में आतापना लेना और सर्दियों में अनावृत रहना काया-क्लेश निर्जरा के भेद के अन्तर्गत बाह्य तप में माना है।

आगम में आई हुई तपस्या की विभिन्न विधियों का जिक्र ऊपर किया जा चुका है। ये सब तप साधु तथा साध्वियों द्वारा समाचरित होते रहे हैं। श्रावक-श्राविकाओं द्वारा इस प्रकार की तपस्या करने का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। श्रावक-श्राविकाओं की लम्बी तपस्या का उल्लेख आगमों में कहीं मिलता ही नहीं। सिर्फ अट्ठम (तेला) तक तप करने का जिक्र अवश्य प्राप्त होता है, या अनशन करने का उल्लेख मिलता है और तपस्याओं का उल्लेख क्यों नहीं मिलता? सचमुच, यह शोध का विषय है। क्या तेले से ऊपर तपस्या किसी ने की ही नहीं? अगर नहीं की तो क्यों नहीं की? या तपस्या के साथ ध्यान अनिवार्य था? अथवा ध्यान के साथ ही तपस्या होती थी? और श्रावक अधिक ध्यान न कर सकने की स्थिति में लम्बी तपस्या नहीं कर सके? इन सब तथ्यों का शोध करने पर ही पता लग सकता है। आज तपस्या के साथ ध्यान का कोई सम्बन्ध नहीं है। और श्रावक-श्राविकाएँ भी आज तिविहार तपस्या काफी लम्बी-लम्बी करने लग गये हैं। अठाई, पखवाड़ा तो सामान्य बात है, ऊपर में मासखमण आदि की तपस्या भी प्रतिवर्ष काफी लोग कर लेते हैं। ऊपर में तिविहार तपस्या एक सौ बीस दिन तक करने वाली पंजाब की बहिन कलावती है, इसने इस तपस्या के काफी दिन युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी के सान्निध्य में बिताये थे। स्थानकवासी समाज में भी एक बहिन पिछले वर्षों में काफी लम्बी तपस्याएं करती रही है।

परम्परागत तप—आजकल तप के कुछ और भी प्रकार प्रचलित हैं, जिसका उल्लेख आगमों में नहीं है। लगता है यति लोगों ने उनका क्रम प्रचलित किया है। नोकारसी, पोरसी, पुरिमड्ढ, एकासन, आयंबिल, अभिग्रह आदि जो आगमों में अलग-अलग आए हुए हैं, उनका संयोजन विभिन्न स्तर पर करके अलग-अलग नाम से तपस्या का क्रम प्रचलित कर दिया था, वास्तव में उनका यह महत्त्वपूर्ण पवित्रतम उपक्रम था।

दस पचखान—यह दस दिनों का तप विधान है, इसमें नोकारसी प्रातःकालीन (एक मुहूर्त) के त्याग से से प्रारम्भ कर चरम पचखाण सन्ध्या में एक मुहूर्त दिन से चौविहार करके सम्पन्न किया जाता है। इसमें दस दिनों में तप करने का क्रम इस प्रकार है।

१. नोकारसी : सूर्योदय से एक मुहूर्त (४८ मिनट) का चारों आहार का त्याग करना होता है। नोकारसी तिविहार नहीं होती, वह चौविहार ही करनी पड़ती है।

२. पोरसी : सूर्योदय से एक प्रहर दिन तक तिविहार या चोविहार त्याग करना।

३. पुरिमड्ढ : सूर्योदय से दो प्रहर (आधा दिन) तक तिविहार या चौविहार त्याग करना।

४. एकासन : दिन में एक बार आहार करके त्याग करना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. एकलठाणा : इसमें भी दिन में एक बार आहार करके त्याग किया जाता है, विशेषता यह है एकलठाणे में एक बार में ही खाने के लिए लिया जाता है। इसे सामान्यतः मौन रखकर ही किया जाता है।

६. नीवी : इसमें विगय के लेपमात्र का भी त्याग करना पड़ता है। छौंक दिया हुआ साग, चुपड़ा हुआ फुलका भी काम नहीं आ सकता।

७. आयंबिल : एक धान की बनी हुई बिना नमक, मिरच की वस्तु और पानी के अतिरिक्त त्याग करना पड़ता है।

८. उपवास : पहले दिन के शाम से दूसरे दिन के लिए तिविहार या चौविहार त्याग करना।

९. अभिग्रह : अमुक संयोग मिले तो पारणा करूँगा नहीं तो अमुक समय तक नहीं करूँगा। इस प्रकार त्याग करना।

१०. चरम पचखाण : एक मुहूर्त रहे तब चौविहार त्याग करना।

दस पचखाण करते हुए सामान्यतः रात्रिभोजन का त्याग, सचित्त का त्याग, ब्रह्मचर्य का पालन करने की परम्परा है।

अढाई सौ पचखाण—इन्हीं दस पचखाणों को पच्चीस गुणा करके करने से अढाई सौ पचखाण हो जाते हैं। २५ नोकारसी, २५ पोरसी, २५ दो पोरसी ऐसे दसों प्रत्याख्यान पच्चीस-पच्चीस करने से अढाई सौ हो जाते हैं। इसमें अढाई सौ दिन लगते हैं। अढाई सौ व्यक्ति मिलकर करें तो यह तप एक दिन में भी हो जाता हैं। पच्चीस-पच्चीस व्यक्तियों द्वारा दसों प्रत्याख्यानों को करने से एक दिन में ही इसे सम्पन्न किया जा सकता है।

कर्मचूर तप—यह भी पारम्परिक तप है, इसमें सवा सौ उपवास, बेला बाबीस, तेला तेबीस, चोला चौदह, पंचोला तेरह, अठाई दो क्रमशः की जाती है। कर्मचूर में तपस्या के दिन तीन सौ पिचोतर होते हैं और पारणे के दिन एक सौ निन्याणु होते हैं।

लड़ी तप—इस तप में तीर्थंकरों की संख्या को माध्यम मानकर एक से चौईस तक चढ़ा जाता है। पहले तीर्थंकर का एक उपवास, दूसरे तीर्थंकर के दो उपवास, ऐसे चढ़ते-चढ़ते चौईसवें तीर्थंकर के चौईस उपवास लड़ी बंध करने होते हैं, इसे लड़ी चढ़े ऐसा माना जाता है, उतरने का भी वैसा ही क्रम है। ऐसे विहरमान तीर्थंकरों का भी लड़ी तप किया जाता है। कई गणधरों का भी करते हैं।

पखवास तप—इस तप में तिथि क्रम से उतने उपवास उसी तिथि को किये जाते हैं। जैसे—एकम का एक उपवास एकम की तिथि को ही किया जाता है। दूज के दो उपवास वदी सुदी दूज को ही किये जाते हैं। इसी प्रकार चढ़ते-चढ़ते अमावस और पूर्णिमा के पन्द्रह उपवास कर इसे सम्पन्न किया जाता है। इसमें पाँच वर्ष सात महिने लग जाते हैं। प्रायः इसका प्रारम्भ भाद्रपद वदी १ किया जाता है और छठे वर्ष की होली की पूर्णिमा पर उपवास करके सम्पन्न किया जाता है।

सोलियो—संवत्सरी से सोलह दिन पूर्व इसे प्रारम्भ किया जाता है, एक दिन उपवास और पारणे के दिन बीयासन (दो बार) से अधिक भोजन नहीं करना। इस तप वहन के समय ब्रह्मचर्य का पालन, सचित्तमात्र का त्याग और रात्रि चऊविहार करना अनिवार्य है।

चूड़ा तप—आगे सुहागिन बहनों को चूड़ा पहनना अनिवार्य था। दोनों भुजाओं पर हाथी दाँत का बना हुआ चूड़ा हुआ करता था। एक तरफ के चूडे में लगभग बीस चूड़ियाँ हुआ करती थीं। बायें हाथ के चूड़े के नाम से जो तप किया जाता था, उसे चूड़ा तप कहा जाता था। इसमें बीस दिन एकान्तर किया जाता है और पारणे में बीयासन किया जाता है।

बोरसा तप—यह भी बहनों के पहनने का एक आभूषण होता है, इसे प्रतीक बनाकर एकान्तर से चार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपवास और चार बीयासन करने को बोरसा तप कहते हैं। दोनों अंगों का बोरसा तप करने से आठ उपवास और पारणा में बीयासना करके इसे सम्पन्न किया जाता है।

वाटकी तप—इसमें चार व्यक्ति सबेरे-सबेरे बिना कुछ खाये-पीए किसी पाँचवें व्यक्ति से चार वाटकियाँ तैयार करवाते हैं। पाँचवाँ व्यक्ति चार वाटकियों में एक में घी, एक में छाछ, एक में नवकरवाली और एक को खाली रखकर ढक देता है। फिर चारों व्यक्तियों को वहाँ बुलाया जाता है। चारों एक-एक वाटकी को खोलते हैं। घी वाली वाटकी जिसने खोली उसे एकासना करना होता है। छाछ वाली वाटकी जिसके निकली उसे नीबी करनी पड़ती है। जिसकी वाटकी में नवकरवाली निकली उसे आयंबिल करना पड़ता है। जिसकी वाटकी सर्वथा खाली निकली उसे उपवास करना पड़ता है। वाटकी खोलने से पहले यह किसी को पता नहीं रहता कि आज कौनसा तप करना है। वाटकी खोलने पर जिस तप का संकेत मिला उसी तप को उसी समय पचख लिया जाता है। वाटकी तप भी सोलह दिन करने का होता है।

परदेशी (प्रदेशी) राजा का बेला—राजा परदेशी (प्रदेशी) पहले नास्तिक था। बाद में आचार्य केशीकुमार श्रमण से धर्म समझकर श्रावक बन गया। राज्य की समुचित व्यवस्था करके स्वयं विशिष्ट उपासना में लग गया, बेले-बेले पारणा करने लगा। बारह बेले सम्पन्न हो गये, तेरहवें बेले के पारणे में महारानी सुरिकान्ता के जहर दिये जाने से समाधियुक्त मरकर स्वर्गवासी बना।

उसी के उपलक्ष में यह तप किया जाता है। एक के बाद एक यों संलग्न बारह बेले किये जाते हैं और तेरहवाँ बेला चउविहार करके इसे सम्पन्न किया जाता है।

रसवाला तेला—इस तप का नाम पारणे के आधार पर पड़ा है। इसे रसवाला तेला इसलिए कहा जाता है कि इसके पारणे में रसमय पकवान ही खाये जाते हैं। पहले तेले के पारणे में सिर्फ लापसी ही खाई जाती है। दूसरे तेले के पारणे में सीझवाँ चावल और घी, चीनी ही काम में लिया जा सकता है। तीसरे तेले के पारणे में केवल लाडू (मोदक) का ही भोजन किया जाता है। चौथे तेले के पारणे में सीरा खाया जाता है। दिन भर जितनी रुचि हो केवल सीरा ही काम में आएगा। पाँचवें तेले के पारणे में खीर-पूड़ी का भोजन करना होता है। ये पाँच रसवाले तेले हो गए। इसके बाद छट्ठे तेले के पारणे में चन्दनबाला की भाँति उड़द के बाकले लिये जाते हैं। उस दिन चउविहार भी रखना पड़ता है, इसे चंदनबाला के तेले भी कहे जाते हैं।

कंठी तप—इसमें चौदह उपवास एकान्तरयुक्त करने होते हैं, बीच में एक तेला, दो बेला करना पड़ता है। इसका क्रम इस प्रकार है—प्रारम्भ में एक बेला फिर एकान्तर से सात उपवास करना होता है। बीच में एक तेला करके फिर एकान्तरयुक्त सात उपवास करना होता है। अन्त में एक बेला करके इसे सम्पन्न किया जाता है। इसमें इक्कीस दिनों की तपस्या और सत्रह दिन पारणे के होते हैं, कुल मिलाकर अड़तीस दिन का यह कंठी तप होता है।

इसके अतिरिक्त यति लोगों के चलाये हुए तप में धमक तेला, चूँदरी चोला, खीर पंचोला आदि भी हैं। उसमें तपस्या के साथ पीहर और ससुराल वालों को कुछ खर्च भी करना पड़ता था, साथ में यतिजी का भी पात्र भरना होता था।

वर्षी तप—प्रथम तीर्थंकर भगवान श्री ऋषभ के वर्षी तप की स्मृति में जो एकान्तर तप किया जाता है। उसे वर्षी तप माना जाता है। इसका प्रारम्भ प्रायः चैत्र वदी अष्टमी श्री ऋषभ प्रभु के दीक्षा कल्याणक दिवस से किया जाता है। पारणे में बीयासना करते हैं। अक्षय तृतीया को इसे इक्षु रस के पारणे से सम्पन्न करते हैं। कई तपस्वी लोग बेले-बेले और कई तेले-तेले भी वर्षी तप करते हैं।

सामूहिक तपस्या क्रम

सामूहिक तपस्या का क्रम अन्य जैन सम्प्रदायों की अपेक्षा तेरापंथ सम्प्रदाय में अधिक है। यहाँ पंचरंगी, सतरंगी, नौरंगी, ग्यारहरंगी और तेरहरंगी तपस्याएँ होती रहती हैं। पंचरंगी में—पाँच ५, पाँच ४, पाँच ३, पाँच २, पाँच १ इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार पच्चीस व्यक्ति तपस्या करने वाले होने चाहिये और सब का पारणा साथ में आना चाहिये। अकस्मात् बीच में किसी का पारणा हो गया तो कोई व्यक्ति आगे तपस्या करके पूरी कर सकता है।

इसी प्रकार सतरंगी में सात-सात व्यक्ति ७, ६, ५, ४, ३, २, १ करने वाले चाहिये, सबकी संख्या उनपचास हो जाती है। नौरंगी में नौ-नौ, ग्यारहरंगी में ग्यारह-ग्यारह, तेरहरंगी में तेरह-तेरह व्यक्ति हर पंक्ति की तपस्या करने वाले होने चाहिये।

सामूहिक तपस्या का प्रारम्भ सर्वप्रथम जोधपुर राजस्थान में हुआ ऐसा उल्लेख मिलता है।

उपसंहार

तपस्या की प्रचलित कुछ विधियों का जिक्र यहाँ किया गया है, और भी बहुत विधियाँ हैं, अनेक तप-प्रतिमाएँ हैं, जिसमें तपस्या के साथ-साथ आसन, आतापना और ध्यान आदि के अभिग्रह भी संयुक्त हैं। कुल मिलाकर यह निराहार तप जीवन को परिशोधन करने वाला महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान है। इसे बहुत उत्साह से करना चाहिये। आगम ग्रन्थों में आया है—

"अग्लान मनोभाव से की जाने वाली तपस्या महान कर्म निर्जरा का हेतुभूत बनती है।"

तपस्या में शारीरिक म्लानता स्वाभाविक है, किन्तु मन उत्साहित और वर्धमान रहना चाहिये तब ही हम तप की पवित्र अनुभूति से लाभान्वित हो सकेंगे।

तपस्या के साथ ध्यान का क्रम बैठ जाए तो मणिकांचन संयोग बन जाए। वैसे एक दूसरे के सहायक माने गये हैं। तपस्या में ध्यान सुगमता से जमता है और ध्यान से तपस्या सुगम बन जाती है। अच्छा हो, हम तपस्या के सभी पहलुओं को समझें, फिर अपनी शारीरिक शक्ति का अनुमान लगाएँ और पूरे उत्साह के साथ तपस्या के अनुष्ठान में उतरें।

×××××××
×
×
×
×

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वाऽन्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव, मृत्युं श्रुति परायणाः॥

—गी० १३, २५

जो नहीं जाते वे जानने वालों से सुनकर तत्त्व का विचार करते हैं। जो सुनने में तत्पर हैं, वे मृत्यु को तर जाते हैं।

×
×
×
×
×××××××

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org